

समयसार, ४५ गाथा । शिष्य पूछता है कि जो अध्यवसान आदि भाव अर्थात् क्या ? राग की एकता का जो अभिप्राय-अध्यवसान और शुभ-अशुभराग, ये सब चैतन्यस्वभाव नहीं है । शब्द का अर्थ तो यह है कि उपोद्घात है कथंचिदन्वयप्रतिभासेप्यध्यवसानादयः पुद्गलस्वभावा इति चेत् इसका अर्थ यह हुआ कि शिष्य का यह प्रश्न है कि राग—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव या उसकी एकताबुद्धि का भाव, ये सब जीव नहीं कहे; चैतन्यस्वभाव जीव कहा—इतना इसमें से निकाला; पुद्गलस्वभाव कहा न, इसलिए जीवस्वभाव नहीं—ऐसा इसमें से निकाला । शान्ति से समझने जैसी चीज है यह तो, भाई! आहाहा!

यह अन्य चैतन्यस्वभाव को जीव कहा.. अन्य चैतन्य अर्थात् ? ये काम-क्रोध,

शुभाशुभभाव, इनसे अन्य जीवस्वभाव कहा। जीव स्वभाव, चैतन्यस्वभाव, इन विभावभाव से अन्य चैतन्यस्वभाव आपने कहा। समझ में आया? आहाहा! तो ये भाव भी चैतन्य के साथ सम्बन्ध रखनेवाले प्रतिभासित होते हैं.. ये राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, मिथ्या अध्यवसाय, ये जीव की पर्याय के साथ सम्बन्ध दिखता है; ये जड़ के साथ तो सम्बन्ध नहीं दिखते। (चैतन्य के अतिरिक्त जड़ के तो दिखाई नहीं देते), तथापि उन्हें पुद्गल के स्वभाव क्यों कहा? ऐसे स्वभाव। राग शुभ हो या अशुभ हो, वह चैतन्यस्वभाव उससे अन्य है और चैतन्यस्वभाव से वह रागभाव अन्य है, इसलिए तुमने उसे जीवस्वभाव नहीं कहा; उसे पुद्गलस्वभाव कहा, परन्तु जीव के साथ सम्बन्ध तो रखते हैं, वे कहीं जड़ में नहीं होते। आहाहा!

जीव की पर्याय में सम्बन्ध तो रखते हैं तो आपने उन्हें पुद्गल स्वभाव कैसे कहा? उन्हें चैतन्यस्वभाव क्यों नहीं कहा? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें हैं। तथापि उन्हें पुद्गल के स्वभाव क्यों कहा? उसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं।

अद्विहं पि य कम्मं सव्व पोग्गलमयं जिणा बेंति।

जस्स फल तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स॥४५॥

रे! कर्म अष्ट प्रकार का, जिन सर्व पुद्गलमय कहे।

परिपाक में, जिस कर्म का फल दुःख नाम प्रसिद्ध है ॥४५॥

टीका - अध्यवसानादि समस्त भावों.. आठ कहे थे न? आठ बोल। भावों को उत्पन्न करनेवाला.. राग की एकताबुद्धि और राग, इन समस्त भावों को, आहाहा! राग की एकताबुद्धि उत्पन्न करनेवाला और राग को उत्पन्न करनेवाला, जो आठों प्रकार का ज्ञानावरणादि कर्म है,... आहाहा! मिथ्यात्व और राग-द्वेष को उत्पन्न करनेवाला कोई जीव चैतन्यस्वभाव नहीं है। आहाहा! चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय वीतरागता स्वभाव, वह विकार को उत्पन्न करे, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है; इसलिए जो आठों ही कर्म का जो फल उत्पन्न करनेवाला आठों ही प्रकार का कर्म, वह सभी पुद्गलमय है—ऐसा सर्वज्ञ का वचन है। आहाहा!

शुभ और अशुभभाव.. यहाँ तो अभी शुभभाव की अधिक मुख्यता है और उसकी एकता, बस, दो। तो शुभभाव की एकता, वह भी कर्म वस्तु है, वह जब उदयरूप आता

है, आहाहा! **विपाक की मर्यादा को प्राप्त..** ऐसा है न? कर्म तो अन्दर पड़े हैं, जड़, आठ, परन्तु उसके पाकरूप विपाकफल की मर्यादा में जब आता है... समझ में आया? आठ कर्म हैं, वे तो अजीव द्रव्य-गुण-पर्यायरूप पड़े हैं, अब उनकी सत्तारूप से... परन्तु उनके विपाक की मर्यादा से जब उसका पाक आया, आहाहा! आठ कर्म तो सब पुद्गलमय है - ऐसा सर्वज्ञ का वचन है, आहाहा! **क्योंकि विपाक की मर्यादा को प्राप्त उस कर्म के फलरूप से जो कहा जाता है..** आहाहा!

भगवान आत्मा में ऐसा कोई गुण या शक्ति नहीं है कि उसका पाक हो, सत्ता में जो स्वभाव है, उसका पाक हो, तो विकार हो - ऐसा कोई स्वभाव नहीं है, आहाहा! परन्तु जो कर्म है, उसकी मर्यादा में जब पाक की मर्यादा से आया, आहाहा! तब आत्मा की पर्याय में.. आहाहा! कैसा है? (अर्थात् कर्मफल) आहाहा! **अनाकुलतालक्षण-सुखनामक आत्मस्वभाव..** क्या कहते हैं? कि उस कर्म का पाक हुआ.. सत्ता में तो भले पड़ा था, परन्तु पाक हुआ, तब जीव में जो राग-द्वेष और दया, दान, विकल्प और एकताबुद्धि या रागादि.. ये पुद्गलमय कहे। क्यों? कि कर्मफल, यह आहाहा! अनाकुल लक्षण जो सुख, भगवान आत्मा का तो अनाकुल लक्षण सुख है। भगवान आत्मा उसे ऐसा कहा जाता है न कि भाई! उसे पकड़ना, ग्रहण करना, आलम्बन लो - इसका अर्थ इतना कि जो वस्तु है, उसमें अहंपना करो। यहाँ जो अहंपना है - राग में अहंपना है; और ज्ञान का क्षयोपशम जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे वहाँ उसका अहंपना / अभिमान बढ़ता जाता है, क्योंकि वहाँ अहंपना है न? आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यस्वभावी अनाकुल आनन्दस्वरूप, ऐसा जो सुख, इस नाम का आत्मस्वभाव.. आहाहा! देखा? अनाकुल जो आत्मस्वभाव सुख, उस चैतन्यस्वभाव का पाक.. चैतन्यस्वभाव का अनाकुल आनन्दस्वरूप (है तो) उसका पाक तो अनाकुल / सुख, पर्याय में आना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? **अनाकुल सुख नामक आत्मस्वभाव से विलक्षण है...** कौन? कर्म के पाक की मर्यादा से हुए भाव - ये राग, पुण्य, दया, दान, काम-क्रोधादि। आहाहा! यह आत्मस्वभाव, जो सुखरूप होने से, उससे विलक्षण.. क्या शैली! भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द लक्षण स्वरूप, अनाकुल स्वरूप का पाक भी अनाकुल सुख होना चाहिए। ऐसे सुख से विपरीत.. आहाहा! कर्म एक

पदार्थ-वस्तु है। यहाँ तो आठों कर्मों को दुःख का फल कहते हैं, आठों कर्मों का फल दुःख है-ऐसा कहते हैं। प्रतिजीवी गुण को भी इस अपेक्षा से कहते हैं। समझ में आया? प्रतिजीवी गुण हैं, वे कहीं आनन्द को रोकते नहीं, परन्तु उस आनन्द को चार घाति (कर्म) का फल आनन्द का अभाव करता है, फल में। स्वभाव की दृष्टि नहीं और उसकी दृष्टि वहाँ पर के ऊपर है, तो कर्म आठ, (में से) चार घाति (कर्म) के फलरूप से तो वहाँ अनाकुल सुख से विलक्षण दुःख की उत्पत्ति होती है। आहाहा!

कहो, यह शुभराग—दया, दान, व्रत, भक्ति का राग, वह दुःख है - ऐसा कहते हैं। क्यों? कि अनाकुल आत्मा का सुख जो स्वभाव, उससे विलक्षण (अर्थात्) विपरीत लक्षणवाला, वह दुःख है, विलक्षण होने से दुःख है। जिसे अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्दस्वरूप में जिसका अहंपना - 'यह मैं' - ऐसा आया नहीं, ग्रहा नहीं कहो, परन्तु उसका अहंपना 'यह मैं' - ऐसा आया नहीं; उसे यह कर्म के पाक को विपाक से चढ़े हुए भाव शुभ और अशुभ आदि 'वह मैं हूँ' - ऐसा वह दुःख है, तथापि 'वह मैं हूँ' - यह कर्म का पाक है, यह जीव का पाक नहीं। आहाहा! बात बहुत ऐसी है, बापू! फिर स्पष्टीकरण करेंगे आगे छयालीस में। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा, अनाकुल लक्षण ऐसा जो सुख, उसस्वरूप प्रभु है और उस सुख का अहंपना अन्दर आने पर, 'यह मैं हूँ' - ऐसा होने पर, इसकी पर्याय में अनाकुल सुख की दशा आती है। ऐसे सुख से विपरीत लक्षण, कर्म के पाक की मर्यादा को प्राप्त पाक-विकार, वह अनाकुल सुख से विपरीत दुःख है। आहाहा! कहो, यह बातें हैं। ज्ञानी को भी जो कुछ राग आता है, कहते हैं कि वह भावक का भाव दुःख है। कर्म भावक है, उसके लक्ष्य से हुआ पुण्य-पाप का भाव, वह दुःखरूप है, दुःख है। आहाहा!

उस दुःख में ही आकुलतालक्षण अध्यवसानादि भाव समाविष्ट हो जाते हैं;.. आहाहा! अब ऐसी बात कहाँ? यह तो दया करो, व्रत पालो और भक्ति करो तथा यह करो और वह करो... अरेरे! और एक ऐसा कहता है कि अभी शुभयोग ही है... प्रभु... प्रभु... प्रभु...! आत्मा है ही नहीं अभी? जो शुभयोग है, वह अनाकुल लक्षण जो सुख, उससे विलक्षण कर्म के पाक का फल तो दुःख है। वह दुःख ही है अभी? धर्म है ही नहीं?

आहाहा! कठिन काम! इस प्रकार की सूझ है न? इसलिए (ऐसा कहता है)। यहाँ परमात्मा तीर्थकरदेव जिनेश्वरदेव की वाणी में यह आया, वह सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। ऐसा आया न? सर्वज्ञ का वचन-आया न? सर्वज्ञ के वचन ऐसे हैं। कहो भाई! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव धर्मपिता-ऐसे सर्वज्ञदेव का यह वचन है कि कर्म की हद में-मर्यादा में.. पाक की उसकी मर्यादा है न? आहाहा! उसमें आया हुआ जो राग शुभ, वह अनाकुल लक्षण सुख प्रभु से विलक्षण दुःख में जाता है, वह तो। आहाहा!

आकुलतालक्षण आदि भावों.. सब आठों कहे न? आहाहा! राग की एकतारूप अध्यवसाय, राग-तीव्र-मन्द भाववाला राग या कर्म या आठों कर्म होकर आत्मा और कर्म व आत्मा होकर आत्मा, ऐसे जो आठों भाव, वे तो अध्यवसान आदि भाव दुःख-आकुलता लक्षण दुःख में ही समाविष्ट होते हैं, वे दुःख में ही जाते हैं। ऐसी बात! हैं! आहाहा! अनाकुल लक्षण आनन्द का जिसे अहंपना आया नहीं, आहाहा! उसे इस ज्ञान के क्षयोपशम में अहंपना आये बिना रहता ही नहीं; आहाहा! वैसे-वैसे उसे अभिमान बढ़ता जाता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा! यह तो कर्म का पाक, हों! यह क्षयोपशम है, आहाहा! वह परलक्ष्यी है न? कठिन बात है, भाई! जैसे रागादि दुःख में समाविष्ट होते हैं, वैसे स्व उपयोग के अतिरिक्त पर में उपयोग जाता है; इसलिए उसका अर्थ यह हुआ कि जितना पर में उपयोग जाता है - राग का, आदि का भाव, आहाहा! वह भी अनात्मा है। पण्डितजी! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! वह अनात्मा है। वह कर्म के फलरूपी दुःख में जाता है। आहाहा!

अब कहाँ जगत्! दया करो, दान करो, भक्ति करो, व्रत करो, अपवास करो - यह सब शुभविकल्प, यह तो कहते हैं कि दुःख में जाता है, कर्म के पाकरूप से दुःख में जाता है। अनाकुल सुख से विलक्षण यह है। आहाहा! ऐसा मार्ग कठिन लगे लोगों को! अरे! जिसने आत्मा को पकड़ा अर्थात् अहंपना - 'मैं शुद्ध चैतन्यघन हूँ' - यह मैं हूँ - ऐसा जिसे हुआ-आया, उसे भी अभी जितना राग होता है, आहाहा! वहकर्म के पाक का फल दुःख है। कर्म जड़ है, उसका पाक तो जड़ होगा और यह तो दुःख का, दुःख कहा उसे। दुःख तो आत्मा की सुख से उल्टी पर्याय है, परन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि चैतन्यस्वभाव दुःखरूप परिणम - ऐसा कोई स्वभाव ही नहीं है। तब वह दुःखरूप जो दशा है, वह कर्म

के पाक के फलरूप दुःख में जाती है, वह सब। आहाहा! कहो, नवरंगभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह 'प्रभु का मारग है शूरो का, कायर का वहाँ काम नहीं है।' आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! अभिमानी का एक बार पानी उतर जाये वैसा है। हम दया पालते हैं, और व्रत करते हैं, हमें ज्ञान का क्षयोपशम हुआ है, यह सब तो जड़ का क्षयोपशम है-पर का। ऐई! ज्ञानावरणीय आया न? ज्ञानावरणीय का पाक आवे न मन्द, यहाँ क्षयोपशम हो। आहाहा! यहाँ कहते हैं, प्रभु आत्मा तो अनाकुल सुखस्वरूप प्रभु, उसे जिसे अहंपना 'यह मेरा यह स्वरूप है' - ऐसा अहं आया, उसे तो पर्याय में आनन्द का पाक होता है, वह जीवस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? और उसने पूछा था न, उसने शिष्य ने? पुद्गलस्वभाव इतिकिं? ऐसा अर्थात् चैतन्यस्वभाव नहीं - ऐसा फिर उसमें से निकाला। आहाहा!

भगवान! यह पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव, इन्हें पुद्गलस्वभाव कहा, इन्हें चैतन्यस्वभाव से अन्य कहा अथवा इस स्वभाव से जीव चैतन्यस्वभाव अन्य कहा.. आहाहा! तो हमें तो प्रभु पर्याय में इनका सम्बन्ध-पुण्य-पाप के विकारीभाव का सम्बन्ध दिखता है न? उसे तुम पुद्गल का स्वभाव कैसे कहते हो? पर्याय में इसके दिखते हैं, उन्हें पुद्गल का स्वभाव कैसे कहते हो? तब कहा प्रभु! एक बार सुन! आहाहा! चैतन्यस्वभाव ऐसा जो अनाकुल आनन्द, आहाहा! उसका जो अहंपना 'यह मैं' ऐसी जो अन्दर दृढ़ प्रतीति / अनुभव हुआ, उसके फलरूप तो उसे अनाकुल आनन्द का वेदन आता है। आहाहा! तो यह वह वेदन नहीं और उस वस्तु की ओर का अहंपना 'यह मैं जीव स्वभाव' ऐसा नहीं और है, उसे भी जरा जो राग होता है, वह भी कर्म के पाक का दुःख है। आहाहा!

प्रवचनसार में नय अधिकार में ऐसा कहते हैं कि रागादि है, उसका परिणमन मेरा, इसलिए मैं कर्ता हूँ। ज्ञानी ऐसा कहता है, हों! आहाहा! और रागादि होते हैं, वे मुझमें हैं, उनका मैं स्वामी हूँ, उनका मैं भोक्ता हूँ - ऐसे गणधर भी ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह ज्ञान की शक्ति के विकास की अपेक्षा से बात की है और यहाँ दृष्टि के स्वभाव की अपेक्षा से लेकर, (कहा कि) उसका पाक वह कर्म का पाक है, वह जीव / तेरा नहीं। कहो, शान्तिभाई! यह सब वहाँ कुछ समझ में आये ऐसा नहीं, वहाँ जरिया में। अरे मार्ग, वह मार्ग! आहाहा!

यह अध्यवसान आदि कहे न ? आदि अर्थात् वे आठों भाव कहे, भाव हैं वे, परन्तु वे दुःख में समाविष्ट होते हैं, बापू! आहाहा! भगवान अनाकुल आनन्द के फल में उनका समावेश नहीं। आहाहा! प्रभु तो-आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है न! यहाँ तो वह दुःख कहना है, इसलिए आनन्द लिया यहाँ। आहाहा! आहाहा! प्रभु! तू तो अतीन्द्रिय अनन्त अपरिमित हृदरहित आनन्द का सागर है न प्रभु! आहाहा! ऐसे आनन्द के सागर का उछाला आवे - आहाहा! मीठे पानी का उछाला आवे। जैसे इक्षुरस समुद्र है न! इक्षुरस का समुद्र है, उसका उछाला आवे तो इक्षुरस अन्दर आवे या खारा पानी आवे? लवण समुद्र का उछाला आवे तो खारे पानी का उछाला आवे; आहाहा! इसी प्रकार प्रभु! तेरा अनाकुल आनन्दस्वभाव है न? यहाँ तो वह दुःख कहना है न, इसलिए आनन्दस्वभाव लिया है। ज्ञान की परिणति कहनी हो तो अन्तर ज्ञानस्वभाव तू है। आहाहा! भगवन्त! तेरा स्वरूप तो प्रभु अनाकुल आनन्दस्वरूप है न? उस अनाकुल आनन्दस्वरूप का पाक तो अनाकुल आनन्द आवे, ऐसा जो स्वरूप (है), उससे यह दुःख-रागादिभाव, वे विलक्षण हैं। वे दुःख में समाविष्ट होते हैं; भगवान आत्मा के आनन्द में समाविष्ट नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

समाविष्ट हो जाते हैं;.. आहाहा! इसलिए यद्यपि वे चैतन्य के साथ सम्बन्ध होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं.. आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यज्योतस्वरूप आनन्दस्वरूप प्रभु के साथ ये रागादि मेरे, यह तो भ्रम उत्पन्न करते हैं, कहते हैं। आहाहा! अब शरीर, वाणी, मन तो कहीं रह गये। यह सब धूल, आहाहा! परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति, तप और यात्रा का भाव आवे, राग (आवे), आहाहा! भगवान का वचन है, सर्वज्ञ का कि वह भावकर्म का पाक दुःख में जाता है। आहाहा! है न इसमें? सर्वज्ञ का वचन है। स्वयं मुनि, मुनि कहते हैं तो स्वयं परन्तु उनका-भगवान का आश्रय लेकर कहते हैं, भाई! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने इस राग को-यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव-राग आता है, उस राग को भगवान ने तो दुःख में डाला है। पोपटभाई! यह तो चिल्लावे ऐसा है। आहाहा!

यहाँ मुनिराज, दिगम्बर सन्त ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञ परमेश्वर का तो यह वचन

है, प्रभु! आहाहा! कि जितना यह शुभ-अशुभभाव होता है, वह कर्म का पाक है; वह जीव के स्वभाव का पाक नहीं है। कर्म के स्वभाव का पाक है और इसीलिए उसे दुःख कहा जाता है। आहाहा! ऐई! गोविन्दरामजी! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! यहाँ तो राग के साथ क्षयोपशम उपयोग-परलक्षी है न, उसमें भी दुःख आता है कहते हैं, वहाँ आनन्द नहीं आता। आहाहा! कहो, घीया? कहते हैं (कि) घी के स्वाद में जहर का स्वाद नहीं होता - ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा का तो अनाकुल स्वभाव स्वाद है, वह क्योंकि वह अनाकुल आनन्दस्वरूप से भरपूर भगवान है, वह सच्चिदानन्द प्रभु है। सत् अर्थात् शाश्वत्, चित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द से शाश्वत् भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसके पाक में-जीव के स्वभाव के पाक में तो अतीन्द्रिय आनन्द पकता है। आहाहा! इसलिए आठ कर्म के पाक में हुए जो पुण्य-पाप के भाव, वे दुःख में जाते हैं - दुःख में जाते हैं। अनाकुल आनन्द में जाते-आते नहीं हैं। अब यह व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह दुःख में जाता है-ऐसा कहते हैं यहाँ। गजब बातें हैं! भगवान वीतराग का मार्ग.. आहाहा! सर्वज्ञ का ऐसा वचन है - ऐसे सन्त, सर्वज्ञ की साक्षी लेकर बात करते हैं कि जितना व्यवहाररत्नत्रय का जो देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, शास्त्र का पठन अथवा नव तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प.. आहाहा! अथवा पंच महाव्रत के परिणाम, ये सब दुःख में जाते हैं।

श्रोता : देव-गुरु की श्रद्धा.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा नहीं? वह दुःख में जाता है, यह कहा पहले। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इसलिए कहा न उसमें?

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ।

पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ ॥

—तो इसका अर्थ क्या हुआ? यह पंच महाव्रत के परिणाम, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नव तत्त्व के भेदवाला राग और छह काय की दया का भाव,.. आहाहा! यह सब दुःखरूप है। ए... छोटाभाई! वहाँ कलकत्ता-फलकत्ता में यह कुछ नहीं मिलता। ऐसी बात ही नहीं। अजितभाई! भगवान! क्या परन्तु.. कुन्दकुन्दाचार्य! अमृतचन्द्राचार्य!

सन्त-भावलिङ्गी सन्त, जिन्हें आनन्द का वेदन वर्तता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र वेदन वर्तता है, उन्हें यहाँ मुनि कहते हैं। आहाहा! वे मुनिराज ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञ प्रभु ऐसा कहते हैं न भाई! हम गुरु हैं तो ऐसा कहते हैं, और सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं और वाणी कहती है-वह शास्त्र भी ऐसा कहते हैं। यह आ गया न पहले, ४४ (गाथा में) आ गया। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं, उनका आगम ऐसा कहता है और स्वयं ऐसा कहते हैं कि हम गुरु हैं, वह हम सर्वज्ञ की आज्ञा लेकर बात करते हैं। आहाहा! हमें भी जितना पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह दुःखरूप है। आहाहा! वह हमारे ज्ञाता का परज्ञेयरूप है; मेरे स्वज्ञेयरूप वह नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, हैं? ऐसी बातें हैं। आहाहा!

आठों कर्म का फल.. मैंने एक बार तो कहा था, एक बार पहले (कहा था) कि यहाँ चार अघातिकर्म का फल दुःख क्यों कहा? वरना अघातिकर्म है.. जैसे भगवान को वहाँ तो अनन्त आनन्द आया है, अनन्त आनन्द आ गया है परन्तु वहाँ अपेक्षित अव्याबाध आनन्द नहीं है। अनन्त सुख है, उसकी पूर्णता बारहवें (गुणस्थान में) होती है; अनन्त सुख की प्राप्ति तेरहवें (गुणस्थान में होती) है और सिद्ध होने पर उन्हें अनन्त अव्याबाध सुख की प्राप्ति है अर्थात् अव्याबाध का जहाँ अन्दर अभी विरोध है, इस अपेक्षा से यहाँ बात की है। आहाहा! यह कहा था थोड़े दिन पहले। आहाहा! समझ में आया?

अरे प्रभु! भाई! यह कहीं बड़ी पण्डिताई कर डाले, बातें कुछ ऐसी बातें नहीं हैं कुछ बापू! आहाहा! अन्तर का भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का नाथ को जिसने मैंपने-मेरेपने मानकर अनुभव किया, आहाहा! उसे तो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का अनुभव आता है। आहाहा! यह उसका विपाक है.. आहाहा! परन्तु पर्याय में जितना आठ कर्म के लक्ष्य से-उसके पाक के फल में जो जुड़ जाता है, रागादि में (जुड़ जाता है) वह सब दुःख है। समझ में आया? आहाहा!

चार अघातिकर्म को प्रतिजीवी गुण को रोकते हैं। निमित्तरूप से। प्रतिजीवी गुण रुकते हैं अपनी पर्याय से; केवली को भी प्रतिजीवी गुण का उदयभाव है तो उसके कारण

से वह अटका है, यद्यपि केवली को तो वह ज्ञान का ज्ञेय है। केवलज्ञान में जैसा जाना है, वैसा यह जाना है कि यह है, परन्तु वहाँ तक उन्हें अभी असिद्धभाव है, सिद्ध नहीं। आहाहा! चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धभाव, वह उतना भाव उदय है। अघातिकर्म, अभी परिणति में उतनी अभी उल्टी दशा है। समझ में आया? केवली को, हों! उन्हें दुःख भले ही नहीं, परन्तु अव्याबाधपना जहाँ नहीं है, संयोग का जो अभाव होकर अव्याबाधपना आना चाहिए, वह नहीं है, इस अपेक्षा से उन्हें उपचार से दुःख कहा गया है। वास्तव तो दुःख है नहीं। आहाहा!

अब इसमें कितना याद रखना? सब बातें अलग प्रकार की है। हैं! आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तुझमें जितना दया, दान, व्रत, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम और राग है, वह सब.. आहाहा! वह सब दुःख है। अब यह कहता है कि ये सब साधन हैं। अरे! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु! भाई! थोड़े अन्तर से बड़ा अन्तर है, पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा! यह रागभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव, पूजा, यात्रा आदि का भाव, देव-भगवान के दर्शन, देव-मन्दिर, उसकी रथयात्रा निकालना, यह सब भाव राग है, वह दुःख है। आहाहा!

श्रोता : अभ्यास करना वह दुःख है, ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास में विकल्प, वह दुःख है। यहाँ तो अन-उपयोग कहा, उसे दुःख कहा है। परसत्तावलम्बी ज्ञान में सुख नहीं है, इसलिए उसे मोक्ष का मार्ग नहीं कहते। आया है न भाई? परमार्थवचनिका में है; है न, सब है। आहाहा!

जहाँ निज सत्ता में से ज्ञान आया नहीं, आहाहा! इतना सब भले ग्यारह अंग और नौ पूर्व का ज्ञान खिल गया हो, आहाहा! उसे वहाँ अहंपना वर्तता है कि यह मुझे हुआ और यह मेरा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है प्रभु! आहाहा! जिसमें अनाकुल आनन्द की दशा न आवे, वह ज्ञान कैसा? आहाहा! भले लाखों लोगों को समझाने के लिये क्षयोपशम बहुत विकसित हुआ परन्तु वह कोई ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जहाँ स्वभाव चैतन्यस्वभाव पूर्णानन्द प्रभु 'वह मैं हूँ' - ऐसा जहाँ आया। समझाने में क्या आवे? 'यह मैं हूँ' - ऐसा भी तो भेद है परन्तु जो पर्याय की बुद्धि अनादि की है, एक समय की पर्याय खिली है और राग, उसकी बुद्धि अहंपने है, आहाहा! वह मिथ्याबुद्धि है, मिथ्यात्व है,

आहाहा! और एक समय में भगवान परिपूर्ण शुद्ध चैतन्यघन ध्रुव, अखण्ड, अभेद में अहंपना, 'यह मैं' - ऐसी प्रतीति आना.. आहाहा! 'यह मैं!' पर्याय नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा के ज्ञायकभाव का अहंपने की प्रतीति का भाव, तो उसकी पर्याय में उसके साथ उसे आनन्द आता है। क्योंकि अनाकुलस्वरूप प्रभु है। आहाहा! और जितने रागादिभाव होते हैं; अज्ञानी को एकत्वबुद्धि होती है, ज्ञानी को अस्थिरता बुद्धि से होते हैं। आहाहा! परन्तु फिर भी वह दुःख है। आहाहा! ऐसा पकड़ में नहीं आता, इसलिए फिर ऐई! एकान्त है-एकान्त है। एकान्त है.. (ऐसा वे कहते हैं)। कहो, प्रभु! यह तो सम्यक् एकान्त है। तुम जो मिथ्या एकान्त मानते हो, वह अनेकान्त मिथ्या है। यह राग की क्रिया करते-करते कल्याण होगा और निश्चय से भी होगा यह अनेकान्त अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया ?

एक ओर आत्माराम तथा एक ओर आठ कर्म के फलरूप से दुःख। आहाहा! अरे! वीतराग के सिवाय यह बात कहाँ है, बापू! वह भी दिगम्बर जैनदर्शन के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र ऐसी बात नहीं है। आहाहा! 'नागा बादशाह से आघा' अन्तर में आनन्द में झूलनेवाले! यह ऐसा शब्दों में विकल्प आया है, उसे दुःखरूप जानते हैं। ओहो! टीका तो शब्दों से हो गयी है। आहाहा! वह दुःख में समाविष्ट होता है - प्रभु ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं और गुरु स्वयं, सर्वज्ञ कहते हैं, ऐसा कहते हैं। इसलिए गुरु भी साथ आ गये और कहते हैं कि यह वाणी अर्थात् आगम भी साथ आ गया। वीतराग का आगम ऐसा कहता है कि वीतरागी सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं। या वीतरागी सच्चे सन्त-मुनि ऐसा कहते हैं कि.. आहाहा! यह जितना अन्दर में राग होता है, वह सब कर्म का विपाक दुःख है। भगवान पका नहीं, वहाँ तो कर्म पका है। आहाहा! यह आम पका नहीं, यह निंबोली पकी है। आहाहा! निंबोली कड़वी होती है न? आम तो मीठा होता है। भगवान पके वहाँ तो मिठास आती है। आहाहा!

लोगों को ऐसा सूक्ष्म पड़ता है और फुरसत नहीं मिलती तथा मार्ग बहुत सूक्ष्म और अभी तो वह चलता नहीं, अभी तो सब उल्टा ही चलता है। प्ररूपणा भी ऐसी चलती है, अरे प्रभु! क्या हो भाई? सर्वज्ञ का वचन-यहाँ कहते हैं। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर ऐसा

कहते हैं कि पर्याय में जितना राग होता है, वह सब कर्म का पाक दुःखरूप है। भगवान! तेरे आनन्द का विपाक फल वह नहीं है। वह तो कर्म के जहर के वृक्ष का फल है। १४८ प्रकृति को जहर का वृक्ष कहा है न, पीछे अन्त में? आहाहा! वह नीम पर निंबोलियाँ पकी है, कहते हैं। कर्म जो आठ कर्म हैं, उनके फल में जहर पका है। राग हुआ है, वह जहर का पाक आया है। आहाहा! मोक्ष अधिकार में कहा है शुभभाव है, वह जहर का घड़ा है। भगवान अमृत का घड़ा है। आहाहा! उस अमृत के कुम्भ के समक्ष कर्म के-जड़ के पाक के विकल्प को / राग को दुःख कहकर जहर कहकर उसे समझाया है। आहाहा! एक-एक गाथा, एक-एक पद, पूरा शासन खड़ा कर देता है। आहाहा!

इसलिए यद्यपि वे चैतन्य के साथ सम्बन्ध होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं.. यह जो राग आता है, वह मानो चैतन्य का है, चैतन्य के साथ है - ऐसा कहा न? चैतन्य के साथ सम्बन्ध होने का, हों! सम्बन्ध होने का.. आहाहा! वास्तव में तो कर्म के साथ उसका सम्बन्ध है। है अन्त में। यद्यपि वे चैतन्य के साथ.. चैतन्य स्वभाव जो भगवान अनाकुल आनन्दस्वभाव, उसके साथ राग का-दुःख का सम्बन्ध वह भ्रम उत्पन्न करता है, कहते हैं। आहाहा! तथापि वे आत्मस्वभाव नहीं हैं.. बस! यह चैतन्यस्वभाव जो आनन्दस्वभाव, वहाँ राग, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। भले ही चैतन्य के साथ सम्बन्ध का भ्रम-सम्बन्ध का भ्रम उत्पन्न करे।

श्रोता : परपदार्थ भ्रम किस प्रकार उपजाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं भ्रम करता है - ऐसा कहते हैं। भ्रम स्वयं करता है। यह कर्म का पाक है, वह भी भ्रम है, वस्तु में नहीं। आहाहा!

भगवान तो सच्चिदानन्द प्रभु (है)। आहाहा! उसमें भ्रम नहीं है, परन्तु भ्रम उत्पन्न करता है वह कि यह मेरे हैं। यह भ्रम वास्तव में तो पुद्गल का परिणाम है, कहते हैं। आहाहा! एक-एक गाथा! आहाहा! यह तो परम सत्य प्रभु की बात है, भाई! लोग कल्पना से बातें करें - व्यवहार करते-करते निश्चय होता है, यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करते-करते आत्मा (प्राप्त) होता है और समकित होता है, (लोगों की यह बात) अत्यन्त मिथ्याभ्रम है।

श्रोता : शास्त्र में ऐसा आता है कि भगवान की प्रतिमा देखने से सम्यग्दर्शन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो स्वयं जिनबिम्ब देखे, यह जिनबिम्ब देखे – ऐसा कहते हैं। इस प्रकार भगवान को देखे कि निष्क्रिय बिम्ब स्थिर हो गये हैं, इस प्रकार ऐसा अन्दर में हो कि ओहो! प्रभु! मेरा स्वभाव भी निष्क्रिय बिम्ब है, जिसमें राग भी नहीं और परिणमन भी नहीं – ऐसी निष्क्रिय चीज है। आहाहा! समझ में आया? वह जिनबिम्ब यह (अर्थात् स्वयं भगवान आत्मा)। आता है धवल में। वह है वह तो पर रहे और उन पर लक्ष्य जाने से तो राग होगा, राग होगा अर्थात् दुःख होगा – यहाँ तो ऐसा कहते हैं। परमात्मा तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं, जिनेश्वरदेव का इन्द्रों के समक्ष पुकार ऐसा है। आहाहा! जो इन्द्र भक्ति करते थे, समझ में आया? आहाहा! अष्टाह्निका में नन्दीश्वर में देव भक्ति करने जाते हैं न? तो भगवान कहते हैं कि यह भक्ति करने का राग है, वह दुःख है। आहाहा! आता है, परन्तु है दुःख। वह दुःख में समाविष्ट होता है – ऐसा कहा न? दुःख में उसका संग्रह होता है। आत्मा की पर्याय में या आत्मा के गुण में उसका समावेश है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

इसलिए यद्यपि वे चैतन्य के साथ सम्बन्ध.. चैतन्य के साथ सम्बन्ध.. सम्बन्ध नहीं। वास्तव में उसे भावबन्ध भी नहीं। सम्बन्ध अर्थात् बन्धभाव, वह उसमें – आत्मा में नहीं है। आहाहा! राग का सम्बन्ध-बन्ध, भावबन्ध, वह होने का भ्रम उत्पन्न करता है। आहाहा! **तथापि वे आत्मस्वभाव..** भले भ्रम हो, परन्तु आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। **किन्तु पुद्गलस्वभाव हैं।** स्वभाव नहीं न, ऐसा त्रिकाली ज्ञायक आनन्दस्वभाव वह नहीं; इसलिए वह पुद्गलस्वभाव है। यह अजीव अधिकार है; इसलिए यह अजीव स्वभाव है। आहाहा! (लोग) चिल्लाते हैं एकान्त है-ऐसा कहते हैं लोग बेचारे, पता नहीं न, पता नहीं। उन्होंने यह सुना नहीं। अरे प्रभु! तेरी महिमा! और तेरी हीनता की दशा क्यों है, यह तूने सुना नहीं। आहाहा!

‘होशींडा मत हौंश न कीजै’ एक सज्जाय आती है। इस राग और पर के उघाड़ में हौंश मत कर प्रभु! आहाहा! मैं कुछ बढ़ गया हूँ – ऐसा मत मान। आहाहा! कठिन काम

है, प्रभु! इसे तो चैतन्य के साथ सम्बन्ध होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं। वे आत्मस्वभाव नहीं; पुद्गलस्वभाव है। आहाहा! मिथ्यात्वभाव, पुण्यभाव, पापभाव, इन सबको तो भगवान ने पुद्गलस्वभाव कहा है। स्वभाव शब्द लिया है न? पुद्गल के परिणाम – ऐसा नहीं लिया। यहाँ जीवस्वभाव नहीं, इसलिए पुद्गलस्वभाव – ऐसी भाषा प्रयोग की है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

भावार्थ – जब कर्मोदय आता है, तब यह आत्मा दुःखरूप परिणमित होता है.. देखा? उसके कारण नहीं परन्तु स्वयं दुःखरूप परिणमित होता है। चाहे तो राग शुभ हो – दया, दान का हो या चाहे तो पाप हो परन्तु दोनों दुःखरूप हैं। आहाहा! और दुःखरूप भाव है, वह अध्यवसान है। एकताबुद्धि है। इसलिए दुःखरूप भावों में (अध्यवसान में) चेतनता का भ्रम उत्पन्न होता है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु..

श्रोता : वहाँ कहते हैं उत्पन्न करते हैं और यहाँ कहते हैं उत्पन्न होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही हुआ। भ्रम उत्पन्न होता है और स्वयं उत्पन्न करता है। भ्रम उत्पन्न होता है इसे, ऐसा। **परमार्थ से दुःखरूप भाव..** ये शुभाशुभभाव, आहाहा! **परमार्थ से दुःखरूप भाव चेतन नहीं है,..** चेतन का दुःखरूप भाव नहीं होता, आहाहा! क्योंकि चेतन तो अतीन्द्रिय आनन्द स्वभावी वस्तु है। आहाहा! ऐसी बात! **परमार्थ से दुःखरूप भाव चेतन नहीं है,..** यह शुभभाव जो राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव, वह परमार्थ से दुःखरूप भाव.. आहाहा! यह चेतन नहीं है। चेतन को नुकसान उत्पन्न करते हैं, कहते हैं। अब इससे लाभ हो – ऐसा माने.. अरे प्रभु! क्या कहता है? भाई! तू कहाँ जायेगा, बापू! आहाहा!

अनाकुल आनन्द का नाथ नित्यानन्द प्रभु ध्रुव का स्वीकार नहीं करके, इसके – दुःख का स्वीकार, वह मेरा लाभ करे, वह राग की क्रिया मुझे लाभदायक है, दुःख की क्रिया मुझे मेरे आनन्द के नाथ में लाभकारी है (–ऐसा) अज्ञानी को भ्रम है। आहाहा! यह भ्रम तोड़ने के लिये तो यह बात करते हैं; बात इसका भ्रम रखने के लिये नहीं; भ्रम है, उसे तोड़ने के लिये बात है। वे! **कर्मजन्य है, इसलिए जड़ ही है।** वे रागादि दया, दान, व्रत, भक्ति का राग जड़ है; चैतन्यस्वभाव नहीं। आहाहा! विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)